संस्थाए

लोकसंस्कृति के संस्थान : अखाड़े

सभासिंह की लली, सभासिंह की लली
खनुआखेड़ा न जीत अकोड़ी में डरी
उनकी एकऊ न चली...

अकोड़ी की गढ़ी पर अखाड़े से गुँजते गीत के बोल पन्नानरेश महाराज अमानसिंह को चुभ गए। वे पीड़ा से कराह उठे, पर चुपचाप बैठे रहे। अकोड़ी के राजा उनके बहनोई थे और उन्होंने अमानसिंह को अकोड़ी ठहरने का आमंत्रण भेजा था। इसीलिए वे खनुआखेड़ा की विजय के बाद सेना सहित रुके थे। गढ़ी के नीचे पड़ाव था। सेना जीत की खुशी में मनोरंजन की लालसा से उमग रही थी और गढ़ी के सेवक सारी सुविधाएँ जुटा रहे थे। तभी गीत की टेक फिर एक अनुगूँज छोड़कर गायब हो गई और महाराज अमानसिंह रोष से तमतमा उठे-'अभी पता चलता है कि मैं सभासिंह की लली हूँ या लला। जीता हूँ या हारा।' उन्होंने सेनापति को युद्ध का आदेश दिया और कुछ ही घंटों में भयानक मारकाट मच गई। साले ने बहनोई का सिर काटकर बहिन के आँचल में डाल दिया। ऐसा विचित्र था मध्यकाल का विनोद। लेकिन वे अखाड़े क्या थे, उनका इतिहास जहाँ इतना रोमांचक है, वहाँ उतना ही सांस्कृतिक। मध्ययुग की कलाचेतना का संजीवी।

अखाड़े का बदलता अर्थ

अखाड़ा शब्द बहुत प्राचीन है, प्राचीन संस्कृति से जुड़ा हुआ। उसका सबसे पुराना रूप अक्षवाटक या अक्षवाट था, जिसका अर्थ है-जुआ खेलने की वाटिका, बाड़ा या घिरा हुआ स्थान। स्पष्ट है कि उस समय वह समाज के विशिष्ट विनोद से संबद्ध होने के कारण तत्कालीन संस्कृति में विशिष्ट स्थान रखता था, परंतु ललित कलाओं से उसका कोई संबंध न था। उसी का प्राकृत रूप हुआ-अक्खाडग या अक्खाडय, जिसका प्राकृत ग्रंथों में प्रयोग तीन अर्थों में मिलता है-जुआ खेलने का अड्डा, व्यायाम-स्थान और प्रेक्षकों के बैठने का आसन (पाइअसद्दमहण्णवो, पृ. १७) इस रूप में अक्खाडय व्यायाम या मल्लविद्या के साथ-साथ नाट्यकला से भी जुड़ने लगा था। इसी प्राकृत शब्द से 'अखाड़ा' निःसृत हुआ, परन्तु उसका अर्थ बदलता गया।

मध्ययुग में ये अखाड़े सांस्कृतिक केन्द्रों के रूप में बहुख्यात थे। सामान्यतः वे दो प्रकार के थे-एक तो मल्लविद्या या आयुधविद्या के अखाड़े जो धीरे-धीरे वर्तमान कुश्तियों के अखाड़ों के रूप में शेष रहे और दूसरे संगीत, नृत्य, काव्य आदि कलाओं के अखाड़े, जो कालांतर में फड़ों और गोष्ठियों के रूप में परिवर्तित हो गए। प्रारंभ में दोनों प्रकार के अखाड़े मिले-जुले थे, जिनसे विविध कलाओं की एकता को बल मिला था, परंतु बाद में वे अलग होते गए और उनका लक्ष्य सीमित होता गया। इस सीमा के वाबजूद ये अखाड़े मध्ययुगीन संस्कृति के स्फूर्तिकेन्द्र रहे हैं और उनके बिना संस्कृति और काव्य का अध्ययन सम्भव नहीं है।

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

अखाड़ों का स्वरूप

अखाड़ों के मध्ययुगीन रूप के साक्षी हैं-मध्यकाल के अनेक काव्य-ग्रंथ। १२वीं शती में हिंदी के प्रथम कवि जगनिक-रचित 'आल्हखेड' में उनका उल्लेख ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। उसके अनुसार अखाड़े कुश्ती, मल्लविद्या और शस्त्रविद्या के केन्द्र थे। नृत्य के अखाड़े भी वर्तमान थे, क्योंकि लाख सिक्के लेने वाली लाखा पातुर की मांग स्वयं पृथ्वीराज चौहान ने की थी, जो चन्देलनरेश परिमर्दिदेव के लिए प्रतिष्ठा का विष्य बन गई थी। ग्वालियर के कवि नारायणदास के प्रेमाख्यानक प्रबंध 'छिताई कथा' (१५१६-२६ ई.) में अखाड़े का वर्णन तीन स्थलों (हस्तलिखित, छंद २१०, ४८८, ७२६) में हुआ है-

१. नित नवरंग अखारे होई। नट नाटक आवई सब कोई।।
२. देखे मंदिर अनगन खंभा। होहिं अखारे जहँ नटरंभा।
३. पातर हँकरावइ सुलताना। दियो अखारे कौ फुरिमाना।

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि अखाड़ों के लिए अनेक स्तंभों पर निर्मित खुले भवन होते थे, जहाँ नाटक, नृत्य आदि हुआ करते थे। मध्यकाल के विनोदगृहों के रूप में ये अखाड़े राजा, सामंत और प्रजाजन द्वारा मान्य थे और इनकी व्यवस्था राज्य से होती थी। महोबा (जिला हमीरपुर, उ. प्र.) के मदनसागर में विशाल प्रस्तरखंडों का ढेर बारहवीं शती की रंगशाला का अवशेष है। बुंदेलखंड में बारहदरी भवनों की संख्या अधिक है और उनमें अखाड़े हुआ करते थे। बाद में अखाड़ों के लिए चूने के भवन बनने लगे थे। ओरछा के प्रसिद्ध अखाड़े के भवन को ख्यात् नर्तकी प्रवीणराय का महल कहा जाता है, परंतु वह नृत्य, संगीत और काव्य के अखाड़े के उद्देश्य से महाराज इंद्रजीत द्वारा निर्मित करवाया गया था। ऊपर से वह दो मंजिला दिखता है। नीचे की मंजिल का बृहद् कक्ष खुला हुआ है, जिससे लगता है कि उसका प्रयोग सामान्य लोगों के लिए होता था। ऊपर की मंजिल राज्य के विशिष्ट वर्ग के लिए थी। दोनों मंजिलों में दोनों ओर कुछ छोटे-छोटे कक्ष भी हैं, जो साज-श्रृंगार के लिए निश्चित थे।ऊ पर के बृहद् कक्ष में भित्ति चित्र भी लिखे हैं, जिनमें नर्तकी के मुद्रा-चित्रों से अखाड़े का आभास मिल जाता है। एक मंजिल तहखाने के रूप में है, जहाँ प्रवीणराय के प्रिय इन्द्रजीत ही उसकी कला का आनन्द लेते थे। इस प्रकार वह भवन मध्यकालीन अखाड़ों के मंदिरों का एक परिष्कृत रूप प्रस्तुत करता है। तीसरी पंक्ति में उन अखाड़ों का संकेत मिलता है, जो सेना के साथ चलते थे और सैनिकों का मनोविनोद करते थे। ऐसे अखाड़े खुले मैदान में तम्बू लगाकर होते थे। मुस्लिम और मुगल युग में शाही सेना के साथ नर्तकियाँ भी चलती थीं और उनकी शानशौकत देखते ही बनती थी।

तुलसी जैसे भक्तकवि भी इन अखाड़ों की उपेक्षा नहीं कर सके। उन्होंने लंका के शिखर पर शोभित सबसे ऊँचे भवन में विचित्र अखाड़े का वर्णन किया है, जिसके अनुसार उसमें संगीत और नृत्य प्रमुख था। (रामचरित मानस, लंकाकाण्ड, छंद १०) महाकवि केशव की 'कविप्रिया' में अखाड़े का चित्रण २१ छंदों में किया गया है, जिससे प्रकट है कि अखाड़ा नृत्य, संगीत और काव्य का संगम था। नर्तकियों का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है-

नाचत गावत पढ़त सब, सबै बजावत बीन।
तिन में करत कबित यक, रायप्रवीन प्रवीन।।

इस दोहे में 'पढ़त' और 'कबित्त' का अर्थ क्रमशः काव्य-पाठ और काव्य से है। केशवकाल (१६वीं शतीं का उत्तरार्द्ध) में अखाड़े का संबंध काव्य से स्थिर हो गया था। (कविप्रिया, प्रथम प्रकाश, छंद ६०) १७वीं शती में अखाड़े का रूप जहाँ शास्त्रीय हो गया था, वहाँ उसमें एक व्यापकता भी आने लगी थी। अखाड़े केवल किसी स्थलविशेष तक सीमित न रह गये थे, वरन् कलाकारों की कला का प्रदर्शन जहाँ भी होता था, उसे अखाड़े की संज्ञा से अभिहित किया जाता था। उदाहरण के लिए, ओरछा के कवि पं. हरिसेवक मिश्र (१६९८-१७३५ ई.) की कृति 'कामरूप कथा' (छंद, ३/६५) में

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

एक दोहा द्रष्टव्य है-

पावत रानी कौ हुकुम, भयौ अखारौ आय।
राग रंग दस भेद सब, कुँवर कहे समुझाय।।

प्रतियोगिता की दौड़

अखाड़ों में प्रतियोगिता की प्रवृत्ति प्रधान रही है। चाहे नृत्य-संगीत हो, चाहे काव्य-पाठ, सभी में कलाकारों और कवियों की पारस्परिक स्पर्धा दिखाई देती है। इस कारण चमत्कार-प्रदर्शन से आकृष्ट करने की युक्ति लोकप्रिय होने लगी थी। १८वीं शती में चमत्कारों की होड़ उत्कर्ष पर थी। पन्ना के रूढ़िमुक्त रीतिकवि बोधा के ग्रंथ 'विरहवारीश' (१७५५ ई.) में कामकंदला नर्तकी के नृत्य-चमत्कार (तरंग, १४, छंद ४-८) उलेलेख्य हैं-

१. बेला जल भरि सीस, धरि बाला थुंगा नची।
२. दुतिय नृत्य यह रीत, थारी में मुक्ता धरे।
लटन गुहे कर प्रीत, गति औ सुर साधे दुऔ।।
३. लीजे अदभुत येह, थारी पै बाला नची।
सौ सौ दुहरी लेह, गति न जाय थारी बचै।।

इसी प्रकार के चमत्कार अखाड़ों के 'करतब' बन गए थे। संगीत के रागों का चमत्कार भी कला-उत्कर्ष की ऊँचाइयाँ छूता है। (तरंग १४, छंद ३१-३२)। माधव और कामकंदला की प्रतिद्वंद्विता से मध्ययुग की एक प्रमुख प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं-

जानो नहिं माधौ गायो का धौ पवन प्रचंड भयोई।
देखत ही हालै बुझी मसालै अचरज चाहन बोई।।
बह बाल सयानी हिय अकुलानी कर बर बीन सुधारै।
दीपक तहँ गायो अतिथि सुहायो बरी मसालै चारै।।...

नृत्य-संगीत की तरह काव्य की प्रतियोगिताएँ भी हुआ करती थीं, जिनका संकेत आचार्य केशव ने कविप्रिया में किया है। इस तरह ललित कलाओं का पोषण और चिंतन अखाड़ों की देन था। प्रतियोगिताएँ और चमत्कार केवल बाहरी नहीं थे, वरन् उनकी पैठ भीतरी थी। वे कला की साधना और सिद्धि के प्रतीक थे।

मध्ययुग के सांस्कृतिक मूल्य

मध्य युग के अखाड़ों का यह रूप तत्कालीन संस्कृति का एक मूल्य बन गया था, जिसकी गवाही आचार्य केशव का एक दोहा देता है-

कियो अखारो राज को, सासन सब संगीत।

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

ताको देखतइ न्द्र ज्यों, इन्द्रजीत स्नजीत।।

राज्य को अखाड़ा बना देने का अर्थ सांस्कृतिक आदर्श की प्रतिष्ठा करना है, जिससे साफ जाहिर है कि मध्ययुगीन संस्कृति का प्रमुश प्रेरणास्त्रोत अखाड़ा संस्थान था। अखाड़े सांस्कृतिक मूल्य बन गये थे।

रीतिकाव्य के उत्स

इन अखाड़ों से ही एक ओर रीतिकाव्य का उद्भव हुआ है, तो दूसरी ओर फड़ काव्य का। यदि हम रीतिकाव्य के प्रथम आचार्य केशव की 'कविप्रिया' के प्रेरक उपकरणों का अध्ययन करें, तो यह सिद्ध हो जाता है कि कृति की रचना अखाड़े के लिए हुई थी। केशव अखाड़े के गुरु थे और उन्होंने अखाड़े को काव्यशिक्षा प्रदान करना अपनी दायित्व माना था। इस प्रकार बुंदेलखंड के रीतिकाव्य की चेतनाइ न्हीं अखाड़ों से स्फुरित हुई थी। डॉ. भगीरथ मिश्र ने रीतिकाव्य के लिए मुगल शासन के परिणामस्वरूप जीवन में व्याप्त शान्ति और समृद्धि, कला और संस्कृति की प्रगति, विलासिता की भावना एवं भाषा-साहित्य के संरक्षण को जिम्मेदार माना है (हिन्दी रीति-साहित्य, पृ. १८-१९)। लेकिन बुंदेलखंड की परिस्थितियाँ बिल्कुल भिन्न थीं। यहाँ १६वीं शती के प्रारम्भ से ही संघर्षों का ताँता लग गया था। ओरछानरेश रुद्रप्रताप बुंदेला (१५०१-३१ ई.) को सिकंदर लोदी और इब्राहीम लोदी से युद्ध करना पड़े और महाराज भारतीचंद (१५३१-५४ ई.) के समय शेरशाह सूरी ने कालिंजर पर आक्रमण किया था। मुगल बादशाह अकबर ने महाराज मधुकर साहि को वश में करने के लिए चास-पाँच बार सेना भेजी और १५७७ से १५९१ ई. तक बुंदेलखंड युद्धाग्नि में सुलगता रहा। १५९४ ई. में अबुलफजल के नेतृत्व में मुगल सेना ने वीरसिंह देव पर हमला बोल दिया। शती के अंतिम चरण में ओरछा घरेलू संघर्ष का केन्द्र बन गया। केशवकृत 'वीरसिंहदेवचरित' से ज्ञात होता है कि केशव ने रामशाह और वीरसिंहदेव के बीच संधि कराने का प्रयत्न किया था। तात्पर्य यह है कि केशव-काल में ओरछा युद्धों से घिरा रहा। इतना ही नहीं, मुगल बादशाह शाहजहाँ और औरंगजेब के शासन-काल में चम्पतराय और छत्रसाल के मुगलविरोधी युद्धों से पूरा बुंदेलखंड अशान्त रहा। बाद में मराठे, गोसाईं और अंग्रेज बुंदेलखंड पर अधिकार करने के लिए प्रयत्नशील रहे, जिससे निरंतर युद्ध होते रहे। अतएव बुन्देलखंड में रीतिकाव्य का विकास मुगलशासन के परिणामस्वरूप उत्पन्न शांति और समृद्धि तथा अन्य सुफलों से नहीं हुआ, वरनू उसके प्रस्फुटन के कारण दूसरे ही थे। यह तो स्पष्ट ही है कि केशव की प्रेरणा का प्रमुख स्त्रोत अखाड़ा था, अतएव बुंदेलखंड में रीतिकाव्य का उद्भव, विकास और उत्कर्ष इन्हीं अखाड़ों से हुआ था। इस आधार पर रीतिकाव्य के उत्स पर पुनर्विचार अपेक्षित है और मेरी मान्यता है कि ये अखाड़े ही उसके विकास के जिम्मेदार थे।

फड़ काव्य की देन

अखाड़ों का प्रतियोगितापरक प्रवृत्ति से कवियों में स्पर्धा की भावना विकसित हुई। काव्य के नियमों का सहारा लेकर एक पक्ष दूसरे को चुनौती देता था। धीरे-धीरे समस्यापूर्तियों की होड़ शुरू हुई और फाग, मंजों, ख्यालों, लेदों आदि के फड़ों का आविर्भाव हुआ। कोशकारों ने फड़ का अर्थ-'जुआ का अड्डा' दिया है, जो अक्षवाट या अक्खाडय के तत्कालीन अर्थ से मिलता-जुलता है। फड़ की व्युत्पत्ति संस्कृत शब्द 'पण' से मानी गई है और पण का अर्थ भी जुआ का अड्डा और होड़ से बंधा हुआ है। इस दृष्टि से फड़ इन अखाड़ों की कोख से निकला है और इन्हीं की गोद में पला-पुसा है। बुंदेली फड़काव्य तो इन्हीं अखाड़ों की देन है।

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.

धरती के ध्रुवतारे

बहुत ही संक्षेप में मैंने अखाड़ों के अद्‌भुत व्यक्तित्व की चर्चा की है। वास्तव में ये अखाड़े संस्कृति के जीते-जागते संस्थान थे। युद्धों के मैदान में वीरों की थकन मिटाकर नयी स्फूर्ति भरने वाली रात के आह्लादकारी विनोद और विविध कलाओं के विकास में नयी चेतना लाने वाली भोर के तारे। मध्यकालीन अँधेरे में वे धरती के ध्रुवतारे थे, जो रात-दिन चमकते रहे। संस्कृति के अंधकारमय गगन में उनकी रोशनी का महत्त्व वही यात्री जान सकता है, जो उस रात से गुजरा हो। जब-जब ऐसी रात घिर आती है, तब-तब इन ध्रुवतारों की चर्चा होती है और होगी।

© इंदिरा गांधी राष्ट्रीय कला केन्द्र पहला संस्करणः १९९५

All rights reserved. No part of this book may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronic or mechanical, including photocopy, recording or by any information storage and retrieval system, without prior permission in writing.